International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 872-873

योगवसिष्ठ में पुरूषार्थ विवेचन

डॉ० पुरुषोत्तम शर्मा
Teacher, Government Middle School, Kathua, Jammu and Kashmir, India

प्रस्तावना

योगवसिष्ठ विश्व साहित्य में अध्यात्मिक ज्ञानात्मक एवं सदुक्तिपूर्ण ग्रन्थों में अग्रणी है इस ग्रन्थ को वसिष्ठरामायण, आर्षरामायण, ज्ञानवसिष्ठ, महारामायण आदि नामों से भी जाना जाता है। यह ग्रन्थ गुरु वसिष्ठ एवं भगवान श्री राम के संवाद के रूप में है। वैराग्य प्रकरण, मुमुक्षुण्यवहार प्रकरण, उत्पत्ति प्रकरण, स्थिती प्रकरण, उपराम प्रकरण, निर्वाण आदि छः प्रकरणों में यह ग्रन्थ विभक्त है। योगवसिष्ठ केवल दार्शनिक सिद्धान्त एवं आचरण संबंधी नियमों का नहीं अपितु सृष्टि उत्पत्ति के सम्पूर्ण रहस्यों और मोक्ष प्राप्त के उपायों से ओतप्रोत ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ का आरंभ सुतीक्ष्ण नामक ब्राह्मण एवं महर्षि अगस्त्य के आख्यान से होता है। इस आख्यान में महर्षि अगस्त्य सुतीक्ष्ण के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि जैसे पक्षी दोनों पंखों के सहारे उड़ता है वैसे ही मानव ज्ञान और कर्म के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष की प्राप्ति अकेले ज्ञान या कर्म नहीं करा सकते हैं।[1] योगवसिष्ठ के अनुसार आध्यात्मिक उन्नति पुरुषार्थ के बिना सम्भव नहीं है। सम्पूर्ण दुःखों की विनाश की प्राप्ति में पुरुष प्रयत्न ही उपाय है अन्य और कोई उपाय नहीं है।[2] ब्रह्माण्ड में कोई एसी वस्तु नहीं है जो शुभ कर्मो और शुद्ध पौरूष से मनुष्यों को प्राप्त न हो सके।[3] पुरुषार्थ के विषय में महर्षि वसिष्ठ जी कहते हैं कि ज्ञान कानों का आभूषण है इससे अज्ञान रूपी अंधकार का नाश होता है। योगवसिष्ठानुसार संसार में अच्छी तरह पुरुषार्थ करने से सबको सबकुछ मिल जाता है। जो कोई असफल होता है वहाँ उसके सम्यक प्रयत्न का अभाव ही कारण है इसलिए पुरुष को प्रयत्न पर ही निर्भर रहना चाहिए। शास्त्रज्ञ पुरुषार्थ है वही सफल चेष्ठा है उससे भिन्न जो मनमाना आचरण है वही पागलों की सी चेष्ठा है। जो व्यक्ति जिस वस्तु को पाना चाहता है, उसकी प्राप्ति के लिए यदि वह क्रमशः निरन्तर यत्न करता है तो अवश्य उसे प्राप्त कर लेता है।[4] श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र से नियन्त्रित पुरुषार्थ के सम्पादन में तत्पर जो पुरूष का पौरुष है, वही इच्छित फल की सिद्धि का कारण होता है शास्त्र के विपरीत किया हुआ प्रयत्न अनर्थ की ही प्राप्ति कराने वाला होता है। जब कोई पुरुष शास्त्रीय प्रयत्न को शिथिल कर देता है, तब स्वयं दरिद्रता, रोग और बन्धन अपनी दुर्दशा के कारण वह ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है, जहाँ उसके लिए पानी की एक बूँद भी सागर समझी जाती है।

पौरुष दो प्रकार का है पूर्वजन्म और दूसरा इस जन्म का इस जन्म के पुरुषार्थ के द्वारा पूर्वजन्म का पुरुषार्थ शीघ्र जीत लिया जाता है।[5] यथा युवा व्यक्ति बालक को शीघ्र ही जीत लेता है।[6] वर्तमान के किये हुये पुरुषार्थ के द्वारा पूर्व के किये हुए पुरुषार्थ को सुधारा जा सकता है इसलिए पुरुष को कर्मशील होना चाहिए। मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जो व्यक्ति कहते हैं कि दैववश फल में विपरीतता भी आ जाती है तो उनका कथन सत्य नहीं है, क्योंकि अपना पूर्वकृत कर्म ही फल देने के लिए उन्मुख होने पर दैव कहलाता है। उससे अतिरिक्त दैव नाम की कोई वस्तु नहीं दिखाई देती है।[7]

पुरुषार्थ दो प्रकार का है - एक शास्त्रानुमोदित और दूसरा शास्त्रविरुद्ध। इन दोनों मे जो शास्त्र विरुद्ध पुरुषार्थ है वह अनर्थ का कारण होता है और शास्त्रानुमोदित पौरुष परमार्थ वस्तु की प्राप्ति में कारण है। इसलिए पुरूष को शास्त्रीय प्रयत्न से तथा साधु पुरूषों के संग से ऐसा उद्योग करना चाहिए कि इस जन्म का पौरुष पूर्वजन्म के पौरुष को शीघ्र जीत लेता है।[8] योगवसिष्ठ के अनुसार उद्योगशून्य आलसी मनुष्य गर्दभों के समान गये गुज़रे है। अतः स्वयं भी उद्योग छोड़कर उन्हीं की श्रेणी में या तुलना में नहीं जाना चाहिए।[9] शास्त्रानुमोदित किया हुआ उद्योग इहलोक और परलोक दोनों की सिद्धि में कारण है। मनुष्य को पुरुषार्थ रूपी प्रयत्न का आश्रय लेकर इस संसार रूपी गड्ढे से स्वयं बलपूर्वक निकल जाना चाहिए। शुभ पुरुषार्थ से शीघ्र शुभ फल की प्राप्ति होती है और अशुभ पुरुषार्थ से सदा अशुभ फल ही मिलता है। इन शुभाशुभ पुरुषार्थों के अलावा दैव नामक कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इसलिए प्रथम पुरुषार्थ द्वारा नित्यान्तिय वस्तुविवेक आदि पर साधनों का आश्रय लेकर आत्मज्ञानरूपी महान शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये।[10] जो व्यक्ति शास्त्र के अनुसार अपनी श्रवण, मनन आदि चेष्टाओं द्वारा साधन नहीं करते केवल विषयों का ही मन में चिन्तन करते रहते हैं, ऐसे अधम पुरुषों की भोगेच्छा को धिक्कार है। बाल्यावस्था से लेकर अभ्यास में लाये हुये सत् शास्त्रानुशीलन और सत्पुरुषो के संग आदि सद्गुणों द्वारा पुरुषार्थ करने से परम स्वार्थरूप परमात्म साक्षात्कार प्राप्त होता है।

महर्षि वसिष्ठ के अनुसार पूर्वजन्म के पौरुष से भिन्न दैव नामक कोई वस्तु नहीं है, पूर्वजन्म में किया गया पुरुष प्रयत्न ही दैव है। इसलिए में देव के अधीन हूँ, कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं हूँ ऐसी बुद्धि को सत्संग द्वारा तथा सत शास्त्र के अभ्यास द्वारा मन से दूर करके जीवात्मा का इस संसार सागर से उद्धार करना चाहिए। आलस्य से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यदि मानव जीवन से आलस्य को निकाल दें तो कौन धनी तथा विद्वान न होगा आलस्य के कारण ही यह पृथ्वी निर्धनों तथा मूर्खों से भरी पड़ी है। अतः आलस्यवश सत्कर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जितना अधिक तीव्र प्रास होगा उतना ही शीघ्रतापूर्वक फल प्राप्त होगा। इसी का नाम पौरुष है। पूर्वजन्म के पौरुष को ही कोई दैव की संज्ञा देना चाहे तो दे सकता है कोई अन्तर नहीं है।[11] पूर्वजन्म के तथा इस जन्म के पुरुषार्थ दो भेड़ों की भांति लड़ते हैं उसमें बलवान क्षणभर में दूसरे को हराकर विजयी होता है। इस जन्म में किया गया प्रबल पुरुषार्थ अपने बल से पूर्वजन्म के पौरुष या दैव को नष्ट कर देता है। और पूर्व जन्म का प्रवल पुरुषार्थ इस जन्म के पौरुष को अपने वलों से दबा देता है।

योगवसिष्ठानुसार उपार्जित धन का विनाश हो जाने पर खेद नहीं करना चाहिए क्योंकि खेद करना अनुचित है, वरन वहाँ पर पुनः उद्योग करना ही उचित है। जो पुरुष उदारता आदि गुणों से युक्त एवं शुभकर्म के लिए प्रयत्न में कुशल है सदाचार ही जिसका लीला व्यवहार है, वह संसार के मोहरुपी फन्दे से उसी प्रकार निकल जाता है जैसे पिंजड़े से शेर[12] अधिकारी पुरुष का जन्म पुरुषार्थ के सिद्ध होने पर ही सफल होता है अन्यथा नहीं ऐसा जानकर सदैव आत्मकल्याण के प्रयत्न में संलग्न रहना चाहिए। जो व्यक्ति उद्योग का त्याग कर केवल दैव के सहारे बैठे हैं, वे आलसी मनुष्य स्वयं ही अपने शत्रु हैं। वे चारों पुरुषार्थों का नाश कर डालते हैं।[13] बुद्धि, मन और कर्मेन्द्रियों के द्वारा किये जाने वाले कर्म ही पौरुष है। जो वस्तु कल्याणकारी है, जो तुच्छ

नहीं है, जो अनश्वर है, उसी का आचरण करना चाहिए। पौरुष से ही बुद्धिमानों की कल्याण मार्ग में प्रगति होती है। दैव तो दुःख सागर में डूबे हुए कोमल एवं दुर्बल चित्त वाले लोगों के लिये केवल आश्वासन है। क्योंकि जो पुरुष भोजन करता है वही तृप्त होता है, जो नहीं करता उसकी भूख कभी शान्त नहीं होती इससे स्पष्ट होता है कि पुरुषों का पौरुष ही सफल है, दैव नहीं।[14]

योगवसिष्ठानुसार वासनाऐं दो प्रकार की होती हैं शुभ एवं अशुभ। इन दोनों में से व्यक्ति की पूर्वजन्म की वासनाएं शुभ या अशुभ हो सकती हैं।[15] यदि अशुभ हैं तो वे संकट की ओर ले जाती हैं। योगवसिष्ट के अनुसार मानव के मन में पहले जो अनेक प्रकार की वासनांए थी, वे ही इस समय कायिक, वाचिक कर्मरुप में परिणत हुई हैं। जीव में जिस प्रकार की वासना होती है वैसा ही कर्म करता है मन में एक प्रकार की वासना हो और वह कार्य दूसरे प्रकार का करे यह कदापि सम्भव नहीं है।[16] जो जो व्यक्ति, जिस-जिस वासना से युक्त होता है, वह उसी के लिए सदा प्रयत्न करता है।[17] पूर्वजन्म के उस कर्म का पर्यायवाची शब्द दैव है। मूर्ख व्यक्तियों ने दैव की कल्पना की है जो व्यक्ति दैव पर निर्भर रहते हैं कर्म नहीं करते उनका सर्वनाश ही होता है। जैसे ज्योर्तिविद किसी व्यक्ति की दीर्घायु का निर्णय देते हैं यदि वह सिर कटने पर जीवित रहे तब तो दैव माना जा सकता है।[18] या अमुक व्यक्ति बहुत विद्वान होगा यदि वह बिना अध्ययन किये विद्वान बन जाये तब दैव को उत्तम कारण माना जा सकता है।[19] उस प्रकार पौरुष से ही मनुष्य इस संसार में सब कुछ प्राप्त कर सकता है, दैव से नहीं। अतः पुरुषार्थ ही शुभ अशुभ फल देने वाला है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह सज्जन पुरुषों द्वारा बताये हुये अत्यन्त सुन्दर शुभ वासना का अनुसरण करते हुये परम मनोरम भाववयुक्त बुद्धि से परम पुरुषार्थ द्वारा सदा शोकरहित स्थान को प्राप्त करना चाहिए।

संकेत सूची

1ण उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभं जायते परमं पदम्।। योगवासिष्ठ -1/1/7
केवलात्कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षेऽभिजायते।
किंतुभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधं तूभयं विदुः।। यो0 वा0 - 1/1/7

2ण अत्रैकं पौरुषं यत्नं वर्जयित्वेतरा गतिः।
सर्वदुःखक्षयप्राप्तौ न काचिदुपपद्यते।। यो0 वा0 - 3/6/14

3ण नतदस्ति जगत्कोशे शुभकर्मानुपातिना।
यत्पौरुषेण शुद्धेन न समासाद्यते जनैः।। यो0 वा0 - 3/92/8

4ण साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोऽङ्गविचेष्टितम्।
तत्पौरुषं तत्सफलामन्यदुन्मत्तचेष्टितम्।। यो0 वा0 - 2/4/11
यो यमर्थ प्रार्थते तदर्थ चेहते क्रमात्।
अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्धान्निवर्तते।। यो0 वा0 - 2/4/12

5ण प्राक्तनं चैहिकं चेति द्विविधं विद्धि पौरुषम्।
प्राक्तनोऽद्यतनेनाऽऽशु पुरुषाार्थे जीयते।। यो0 वा0 - 2/4/17

6ण द्वयोरद्यतनस्यैव प्रत्यक्षाद् बलिता भवेत्।
दैवं जेतुं यतो यत्नैर्बालो यूनेव शयते।। यो0 वा0 - 2/6/19

7ण यथा संयत्यते येन तथा तेनाऽनुभूयते।
स्वकर्मैवेति चास्तेऽन्यथा व्यतिरिक्ता न दैवदृक।। यो0 वा0 - 2/5/3

8ण अतः पुरुषयत्नेन यतितव्यं यथा तथा।
पुसां तन्त्रेण सद्योगाद्येनाऽऽश्चद्यतनो जयेत्।। यो0 वा0 - 2/5/6

9ण न गन्तव्यमनुद्योगैः साम्यं पुरुषगर्दभैः।
उद्योगस्तु यथाशास्त्रं लोकद्वितयसिद्धये।। यो0 वा0 - 2/5/14

10ण तमात्पुरुषयत्नेन विवेकं पूर्वमाश्रयेत्।
आत्मज्ञानमहार्थानि शास्त्राणि प्रविचारयेत्।। यो0 वा0 - 2/5/21

11ण यथा यथा प्रयत्नः स्याद्ववेदाशु फलं तथा।
इति पौरुषमेवाऽस्ति दैवमस्तु तदेव च।। यो0 वा0 - 2/6/2

12ण तस्मात्पौरुषमाश्रित्य सच्छास्त्रैः सत्समागमैः।
प्रज्ञाममलतां नीत्वा संसारजलधि तरेत्।। यो0 वा0 - 2/6/24

13ण ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थ कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः। यो0 वा0 - 2/7/3

14ण भोक्ता तृप्यति नाऽभोक्ता गन्ता गच्छति नाऽगतिः।
वक्ता वक्ति न चाऽक्ता पौरुषं सफलं नृणाम्।। यो0 वा0 - 2/7/17

15ण सच्छास्त्रादिगुणो मत्या सच्छास्त्रादिगुणान्मतिः।
विवर्धते मिथोऽभ्यासात्सरोब्जाविव कालतः।। यो0 वा0 - 2/7/28

16ण या मनोवासना पूर्व बभूव किल भूरिशः।
सैवेयं कर्मभावेन नृणां परिणति गता।। यो0 वा0 - 2//13
जन्तुर्यद्वासनो राम ! तत्कर्ता भवति क्षणात्।
अन्यकर्मान्यभावश्चेत्येतत्रैवोपपद्यते।। यो0 वा0 - 2/9/14

17ण ग्रामगो ग्राममाप्नोति पत्तनार्थी च पत्तनम्।
यो यो यद्वासनस्त्र स स प्रपतते सदा।। यो0 वा0 - 2/9/15

18ण कालविद्विविनिर्णीता यस्याऽतिचिरजीविता।
स चेज्जीवति संछिन्नशिरास्तद्दैवमुत्तमम्।। यो0 वा0 - 2/8/19

19ण कालविद्विविनिर्णीतं पाण्डित्यं यस्य राघव।
अनध्यापित एवाऽसौ तज्ज्ञश्चद्दैवमुत्तमम्।। यो0 वा0 - 2/8/19